जैन
पथप्रदर्शक
ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)

नैतिक एवं सामाजिक चेतना का अग्रदूत निष्पक्ष पाक्षिक

मोक्ष आत्मा की अनंत-आनन्दमय अतीन्द्रिय दशा है। अबाधित होने से मोक्ष ही परमकल्याण स्वरूप है।

ह्न पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महो., पृष्ठ : 82

वर्ष : 27, अंक : 16 | **सम्पादक :** पण्डित रतनचन्द भारिल्ल | आजीवन शुल्क : 251 रुपये
नवम्बर (द्वितीय)2004 | **प्रबन्ध सम्पादक :** पं. संजीवकुमार गोधा व पं. जितेन्द्र वि. राठी | वार्षिक शुल्क : 25 रु., एक प्रति : 2/-

पण्डित रतनचन्द भारिल्ल का अभिनन्दन समारोह दिनांक 15 एवं 16 जनवरी, 2005 को

जैन समाज के ख्यातिप्राप्त, लब्धप्रतिष्ठ मनीषी विद्वान, श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय के प्राचार्य तथा जैन पथप्रदर्शक (पाक्षिक) पत्रिका के सम्पादक पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल का सार्वजनिक अभिनन्दन समारोह दिनांक 15 एवं 16 जनवरी, 2005 को जयपुर स्थित विद्याश्रम भवन में होगा।

दिनांक 15 जनवरी, 2005 को श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय जयपुर के भूतपूर्व छात्रों का स्नेह मिलन एवं विद्वत् संगोष्ठी आयोजित की गई है तथा दिनांक 16 जनवरी, 2005 को अभिनन्दन ग्रंथ का लोकार्पण किया जायेगा। इसी अवसर पर पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल का प्रमुख संस्थाओं द्वारा भावभीना अभिनन्दन किया जाएगा।

अभिनन्दन समारोह के लिए एक समिति का गठन किया गया है। जिसके अध्यक्ष श्री अशोककुमारजी बड़जात्या ह्न इन्दौर, स्वागताध्यक्ष श्री डालचन्दजी जैन ह्न सागर, उपाध्यक्ष श्री पवनकुमारजी जैन ह्न अलीगढ़, सम्पतकुमारजी गदैया, श्री महेन्द्रकुमारजी पाटनी ह्न जयपुर, सेठ राजेन्द्रकुमारजी जैन ह्न विदिशा, कोषाध्यक्ष श्री भागचन्दजी जैन कोठ्यारी ह्न जयपुर तथा महामंत्री वरिष्ठ पत्रकार श्री मिलापचन्दजी डण्डिया ह्न जयपुर हैं। समिति में अन्य 11 सदस्य भी हैं।

अभिनन्दन ग्रंथ के प्रधान सम्पादक ह्न महामहोपाध्याय पद्मश्री डॉ. सत्यव्रत शास्त्री ह्न दिल्ली हैं। सम्पादक मण्डल में सर्वश्री डॉ. राजारामजी जैन ह्न दिल्ली, डॉ. लालचन्दजी जैन ह्न भुवनेश्वर, डॉ. ऋषभचंदजी जैन ह्न वैशाली, डॉ. विद्यानन्दजी जैन ह्न विदिशा, डॉ. उदयचन्दजी जैन ह्न उदयपुर, डॉ. अभयप्रकाशजी जैन ह्न ग्वालियर तथा डॉ. पी.सी. जैन ह्न जयपुर व पं. पीयूषकुमारजी शास्त्री ह्न जयपुर हैं। सह-सम्पादक - डॉ. श्रेयांसकुमारजी सिंघई ह्न जयपुर तथा पं. बुद्धिप्रकाशजी जैन ह्न जयपुर हैं। प्रबंध सम्पादक - श्री अनूपचन्दजी जैन एडवोकेट ह्न फिरोजाबाद हैं। कार्यकारी सम्पादक के रूप में श्री अखिलजी बंसल ह्न जयपुर हैं। जो अभिनन्दन ग्रंथ की साज-सज्जा तथा अन्य सभी व्यवस्थायें अपनी टीम के साथ मनोयोग से सम्हाल रहे हैं।

अभिनन्दन समारोह के मुख्य आतिथ्य हेतु भारत के उपराष्ट्रपति महामहिम भैरोंसिंहजी शेखावत को आमंत्रित किया गया है। अन्य समागत अतिथियों में सभी भट्टारकगण एवं विद्वत्वर्ग को भी आमंत्रित किया गया है।

लेख आदि प्रकाशन योग्य सामग्री जो अब तक नहीं भेज सके हों वे 30 नवम्बर तक भेज सकते हैं; पश्चात् स्वीकार करना संभव नहीं है।

ह्न अशोक बडजात्या,इन्दौर
अध्यक्ष, पं. भारिल्ल अभिनन्दन समा. समिति

महावीर सन्देश

महावीरस्वामी की वाणी,
प्राणी मात्र को है कल्याणी।
बने सभी की जीवनवृत्ति,
रत्नत्रय की ओर प्रवृत्ति।।
धर्मतीर्थ सच्चा सर्वोदय,
जिससे मिट जाता वर्गोदय।
प्राणी मात्र के लिये धर्म है,
सर्वोदय का यही मर्म है।।
स्याद्वाद की निर्मल धारा,
फैलाती है भाईचारा।
जाती-वर्ण के बंधन तोडो,
मानवता से नाता जोड़ो।।
सप्तव्यसन का कर दो त्याग,
पाँचो पाप दहकती आग।
मद्य-माँस-मधु जो खाते है,
नर्क-निगोद वही जाते है।।
भ्रम मिथ्यात्व मिटे सब मेरे,
आये शरण चरण प्रभु तेरे।
वात्सल्य का भाव जगाओ,
साधर्मी को गले लगाओ।।
अनेकान्तमय बनें विचार,
होगा तभी जगत उद्धार।
अच्छे कार्य सदा ही करना,
बुरे विचारों तक से डरना।।
स्याद्वाद का करो प्रचार,
सह अस्तित्व शुद्ध आचार।
वस्तु स्वरूप ही जैन धर्म है,
यही सत्य है यही मर्म है।।

ह्न अज्ञात

साधना चैनल पर डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के प्रवचन प्रतिदिन प्रात: 6:45 बजे अवश्य सुनें।
साधना चैनल आपके यहाँ न आता हो तो श्री पंकज जैन (साधना चैनल) से 011-32106419 नम्बर पर सम्पर्क करें।

सम्पादकीय –

पञ्चास्तिकाय परिशीलन

19 ह्न रतनचन्द भारिल्ल

गाथा–२६

णत्थि चिरं वा खिप्प मत्तारहिदं तु सा वि खलु मत्ता।
पोग्गलदव्वेण विणा तम्हा कालो पडुच्चभवो ।।२६।।

(हरिगीत)

विलम्ब अथवा शीघ्रता का ज्ञान होता माप से।
माप होता पुद्गलाश्रित काल अन्याश्रित कहा।।२६।।

गाथा २५ में व्यवहारकाल के समय, निमिष आदि भेदों की विस्तृत चर्चा की। अब इस २६ वीं गाथा में आचार्य कुन्दकुन्ददेव कहते हैं कि ह्न 'चिर' अथवा 'क्षिप्र' ऐसा ज्ञान परिमाण काल के माप बिना नहीं होता और परिमाण (माप) पुद्गल के आलम्बन बिना संभव नहीं है, अत: व्यवहारकाल पर के आश्रय से होता है ह्न ऐसा उपचार से कहा जाता है।

आचार्य अमृतचन्द्र टीका में कहते हैं ह्न यद्यपि उपर्युक्त व्यवहार काल द्रव्य का कथन पुद्गलाश्रित होने से पराश्रित कहा जाता है; तथापि निश्चय से वह कालद्रव्य अन्य के आश्रित नहीं है। इसलिए यद्यपि काल को अस्तिकायपने के अभाव के कारण द्रव्यों की सामान्य प्ररूपणा में उसका कथन नहीं है, तथापि जीव पुद्गल के परिणाम की अन्यथा अनुत्पत्ति द्वारा सिद्ध होनेवाला निश्चयरूप काल और उनके परिणाम के आश्रित सिद्ध होने से व्यवहारकाल लोक में है ह्न ऐसा जाना जाता है।

भावार्थ यह है कि व्यवहारकाल की उत्पत्ति और सिद्धि पुद्गलों के माप द्वारा होती है, अत: व्यवहारकाल को उपचार से पुद्गलादि कहा जाता है, किन्तु वस्तुत: कालद्रव्य भी अन्य अस्तिकाय द्रव्यों की भाँति पूर्ण स्वाश्रित है, स्वाधीन है। व्यवहारकाल भी कालद्रव्य की ही पर्याय है, पुद्गल की नहीं।

आचार्य जयसेन इस गाथा की टीका में विशेष बात यह कहते हैं कि ह्न ''यदि कोई कहे कि समय, निमिष आदि रूप ही परमार्थ कालद्रव्य है, इससे भिन्न कोई द्रव्यरूप कालाणु नहीं है; तो उससे कहते है कि ऐसा कहना ठीक नहीं है; क्योंकि जो सूक्ष्म कालरूप प्रसिद्ध समय है, वह कालद्रव्य की पर्याय ही है, द्रव्य नहीं तथा पर्याय द्रव्य के बिना नहीं होती और द्रव्य निश्चय से अविनश्वर है। उस काल पर्याय का उपादान कारणभूत कालाणु कालद्रव्य है।

इसप्रकार यद्यपि समय आदि सूक्ष्म व्यवहारकाल का और घड़ी आदि रूप स्थूल व्यवहारकाल का उपादान कारणभूत निश्चय काल है। तथापि जो समय, घड़ी आदिरूप व्यवहारकाल की भेदकल्पना है, उससे भिन्न त्रिकाल स्थायी अनादि-निधन लोकाकाश के प्रदेशप्रमाण कालाणुरूप द्रव्य ही परमार्थ काल है।

इस निश्चय एवं व्यवहार कालद्रव्य को कविवर हीरानन्दजी ने अपने निम्नांकित पद्य में इसप्रकार स्पष्ट किया है ह्न

(दोहा)

चिर थोरा जो भेद है, मात्रारहित न जान।
मात्रा पुग्गल बिन नहीं, काल प्रतीति बखान।।१५३।।

(सवैया इकतीसा)

लोक-विवहारविषै चिर सीघ्र भेदविषै,
बिना परिनाम ताकौ भेद कैसें पाइए।
पर की अपेच्छा विवहारकाल कहा ऐसा,
निहचै अनन्यभाव स्यादवाद गाइए।।
काय ताकै नाहीं कहीं अस्तिभाव सदा सही,
द्रव्यनाम पावै तातैं वस्तुरूप भाइए।
पुद्गल-परिनाम ताकौ परिनाम करै तातैं,
ताकौ उद्योतकारी पुग्गल बताइए।।१५४।।

इस गाथा के प्रवचन में गुरुदेवश्री कानजी स्वामी कहते हैं कि ह्न ''काल की मर्यादा के बिना थोड़ा काल-बहुत काल ह्न ऐसा नहीं कहा जा सकता; इसलिए काल की मर्यादा का कथन करना आवश्यक है। तथा वह काल की मर्यादा पुद्गलद्रव्य के बिना नक्की नहीं होती। अर्थात् परमाणु की मंदगति, सूर्य की चाल इत्यादि प्रकार के जो पुद्गलद्रव्य के परिणाम हैं उनसे काल की मर्यादा हो सकती है। इसलिए व्यवहार काल की उत्पत्ति पुद्गलद्रव्य के निमित्त से होती है ह्न ऐसा कहा जाता है।

जिनमत में सर्वज्ञदेव ने छह द्रव्य कहे हैं। उन द्रव्यों के बिना लोक की सिद्धि नहीं होती। जगत में निश्चय कालद्रव्य के बिना जीव-पुद्गल का परिणमन संभव नहीं और उनके परिणमन के बिना व्यवहारकाल की सिद्धि नहीं होती। इसलिए आचार्यदेव कहते हैं कि अपने ज्ञान में सूक्ष्मदृष्टि द्वारा युक्ति आदि से निर्णय करके इस कालद्रव्य को जानना चाहिए। कालद्रव्य को जानने का कहा है; परन्तु उपादेयरूप तो अपना एक चिदानंद ज्ञानस्वभाव ही है।

जब क्षणिक राग-द्वेष, पुण्य-पाप जितना ही अपने को मानता था तब तो उसको स्वकाल का भान भी नहीं था और परकाल का ज्ञान भी नहीं था। जहाँ अन्तर्मुख होकर चिदानंदस्वभाव का भान होने पर स्वकाल का पुरुषार्थ प्रकट हुआ, वहाँ उस स्वकाल में निमित्तभूत परकाल का ज्ञान भी हो गया। इसलिए जिसको वीतराग की आज्ञा माननी हो उसको सूक्ष्मदृष्टि से जगत में असंख्य कालाणु हैं ह्न ऐसा निर्णय करना चाहिए।''

इसप्रकार निश्चय एवं व्यवहारकाल की सिद्धि करते हुए अन्त में जीवद्रव्य के स्वचतुष्टय में भी जीव का जो 'स्वकाल' है, उसके भान से जब जीव अन्तर्मुख होकर चिदानन्द स्वभाव का भान करके पुरुषार्थ प्रगट करता है, तब स्वकाल में निमित्तभूत परकाल का ज्ञान भी यथार्थ हो जाता है। ●

गाथा–२७

जीवो त्ति हवदि चेदा उवओगविसेसिदो पहू कत्ता।
भोत्ता य देहमेत्तो ण हि मुत्तो कम्मसंजुत्तो ।।२७।।

(हरिगीत)

आत्मा है जीव देह प्रमाण चित् उपयोगमय।
अमूर्त्त कर्त्ता-भोक्ता प्रभु कर्म से संयुक्त है।।२७।।

छब्बीसवीं गाथा में कहा था कि काल की मर्यादा के बिना थोड़ा काल–बहुत काल ह्न ऐसा व्यवहार नहीं किया जा सकता; इसलिये काल की मर्यादा का कथन करना आवश्यक है तथा वह काल की मर्यादा पुद्गलद्रव्य के बिना नक्की नहीं होती। इसकारण पुद्गल परमाणु की मंद गति तथा सूर्य की चाल आदि के द्वारा समय, घडी, घण्टा आदि को परिभाषित किया जाता है। इसकारण व्यवहार काल की उत्पत्ति पुद्गल के निमित्त से होती है।

अब इस २७ वीं गाथा में आचार्य कुन्दकुन्द देव कहते हैं कि ह्न संसारी जीव चेतयिता है, उपयोग लक्षित है, प्रभु है, कर्त्ता है, भोक्ता है, देह प्रमाण है, अमूर्त है और कर्म संयुक्त है।

आचार्य अमृतचन्द्रदेव ने उक्त गाथा का स्पष्ट करते हुए टीका में कहा हैं कि संसारदशा वाला आत्मा को सोपाधि और निरुपाधिस्वरूप है।

आत्मा निश्चय से भावप्राण को धारण करता है; इसलिये जीव है। व्यवहार से द्रव्यप्राणों को धारण करता है; इसलिये जीव है। निश्चय से चित्स्वरूप होने के कारण चेतयिता है और सद्भूत व्यवहार नय से चित्शक्तियुक्त होने से चेतयिता है। निश्चय से अपृथग्भूत चैतन्य परिणामस्वरूप होने से उपयोग लक्षित है। सद्भूत व्यवहार नय से पृथक्भूत चैतन्य परिणामस्वरूप होने से उपयोग लक्षित है। निश्चय से भावकर्मों के आस्रव–बंध–संवर–निर्जरा–मोक्ष पर्याय प्रकट करने में स्वयं समर्थ होने से प्रभु है। असद्भूत व्यवहार नय से द्रव्यकर्मों के आस्रव आदि करने में स्वयं ईश होने से प्रभू है। निश्चय से पौद्गलिक कर्मों के निमित्त से होनेवाले आत्म परिणामों का कर्तृत्व होने से कर्त्ता है और असद्भूत व्यवहारनय से भाव कर्मों के निमित्त से होनेवाले द्रव्यकर्मों का कर्त्ता है।

इसीप्रकार आत्मा के भोक्तृत्व, देह प्रमाणत्व, अमूर्तत्व, कर्म संयुक्तपना आदि पर भी घटित कर लेना चाहिये।

इसके भावार्थ में कहा है कि प्रारंभिक २६ गाथाओं में षड्द्रव्य और पंचास्तिकाय का सामान्य निरूपण करके अब इस सत्ताईसवीं गाथा में उनका विशेष निरूपण प्रारंभ किया गया है। उसमें प्रथम जीव का निरूपण प्रारंभ करते हुये इस गाथा में संसारस्थित आत्मा को जीव, चेतयिता, उपयोग लक्षणवाला, प्रभू, कर्त्ता इत्यादि विशेषण दिये।

आचार्य जयसेन ने जीव के ९ विशेषणों में प्रथम जीवत्व को शुद्ध निश्चयनय से चैतन्य आदि शुद्ध प्राणों से, अशुद्ध निश्चयनय से क्षायोपशमिक आदि भावप्राणों से तथा अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय से द्रव्यप्राणों से जीनेवाला कहा है। इसीप्रकार चेतयिता को शुद्ध निश्चयनय से शुद्ध ज्ञान चेतना वाला, अशुद्ध निश्चयनय से कर्म, कर्मफल रूप अशुद्ध चेतनावाला कहा है। उपयोगमयत्व को शुद्ध निश्चयनय से केवलज्ञानादि शुद्धोपयोगरूप तथा अशुद्ध निश्चयनय से मतिश्रुत ज्ञानादिरूप कहा है।

इसीप्रकार प्रभू, कर्त्ता–भोक्ता, सदेह प्रमाणत्व को भी शुद्ध निश्चय नय एवं अशुद्ध निश्चयनय से प्ररूपित किया है।

कविवर हीरानन्दजी ने अपने काव्य की भाषा में कहा है कि ह्न

(दोहा)

जीव चेतना गुनसहित, उपयोगी प्रभु उत्त।
करता भुगता देहसम, नहिं मूरख भव–जुत्त।।१५७।।

(सवैया इकतीसा)

निहचै और व्यौहार प्रानधारनतैं जीव,
चेतनसकति तातैं चेतना बखानी है ।
उपयोग योग भाव–दरव–करमकारी,
तत्वनि में मुख्य तातैं प्रभुता समानी है ।।
सुभासुभ कर्म फल भोगता सरीर लसै,
देह मात्र अवगाह मूरतीक प्रानी है ।
कर्मसंजोग धारी विविध भेद संसारी,
मुक्त अविकारी तातैं सुद्धता निदानी है ।।१५८।।

उपर्युक्त सवैया पद्य में कहा कि निश्चय एवं व्यवहार प्राणों का धारक होने से जीव के जीवत्व है, चेतन की शक्ति से चेतयिता है, ज्ञानदर्शन से उपयोगमयी है तथा सब तत्त्वों मे मुख्य होने से प्रभु है। शुभाशुभ कर्मों को भोगता है अत: भोक्ता है अत: भोक्ता है, देहमात्र अवगाही होने से सदेह प्रमाण है। कर्म संयोग से संसारी के विविध भेद हैं, मुक्तावस्था में अविकारी होने से शुद्ध है।

गुरुदेवश्री कानजीस्वामी ने उक्त गाथा को स्पष्ट करते हुये कहा है कि ह्न नय विवक्षा से कहें तो शुद्ध निश्चयनय से आत्मा त्रिकाल चैतन्यप्राणों से ही जीता है। अशुद्ध निश्चयनय से क्षयोपशम भावरूप प्राणों से जीता है। इन्द्रियाँ और मन आत्मा का स्वरूप नहीं है। आत्मा का यथार्थ प्राण तो चैतन्य है इससे वह कभी पृथक नहीं होता।

जीव को चेतयिता कहा है सो निश्चय से जीव पदार्थ चेतनस्वभावी अभेद है, गुण व गुणी दोनों अभेद हैं।

अज्ञानी को ऐसा लगता है कि मेरा रागादि के बिना नहीं चलता; परन्तु आत्मा अनंत काल से चेतना द्वारा ही टिका है। गुण–गुणी भेद भी व्यवहार से है। रागादि भाव तो उपाधि है, वह आत्मा का स्वरूप नहीं है। चेतनागुण व उपयोग को यहाँ एक ही पर्यायवाची के रूप में कहा है।

आत्मा उपयोग लक्षित है ह्न यहाँ प्रश्न हो सकता है कि चेतना और उपयोग में क्या अन्तर है ?

इस प्रश्न का उत्तर यह है कि ह्न आत्मा त्रिकाली द्रव्य है और चेतना उसका त्रिकाली गुण है तथा उपयोग उसकी पर्याय है। चेतना के परिणाम को उपयोग कहा है। उपयोग परिणति रूप है। चेतना का अर्थ यहाँ कर्मचेतना और कर्मफलचेतना आदि नहीं है। ज्ञानचेतना आदि तीन भेद तो पर्यायरूप हैं और यह चेतना तो त्रिकाली गुणरूप है। ध्यान रहे, उपयोग चेतना की पर्याय है।

आत्मा प्रभु है इस विषय में विशेष बात यह है कि आत्मा अपने प्रभुत्व गुण के कारण स्वभाव से तो प्रभु है ही, विकार भी कर्म के कारण नहीं होते, विकार करने में भी प्रभु है। जीव स्वयं की योग्यता से ही अपनी बंध–मोक्ष की पर्यायरूप परिणत होता है, अत: वह प्रभु है।

(शेष पृष्ठ 4 पर...)

धर्मप्रभावना

1. नागपुर (महा.) : अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन, नागपुर द्वारा संचालित महाराष्ट्र प्रान्त तत्त्वप्रचार-प्रसार योजना के अन्तर्गत श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय के स्नातक पण्डित सुनीलकुमारजी बेलोकर शास्त्री, सुलतानपुर द्वारा दिनांक 29 सितम्बर से 31 अक्टूबर, 2004 तक महाराष्ट्र प्रान्त में सिंदखेड राजा, ड़ासाला, अम्बड, वरूड, पानकन्हेरगाँव, साखरा, लाख, पिंपलदरी, जवलाबाजार, शिरडशहापुर तथा आखाडा बालापुर आदि स्थानोंपर प्रवचन, बालकक्षा, प्रौढ़कक्षा, विधान एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों के माध्यम से महती धर्मप्रभावना हुई।

इनमें से कई स्थानोंपर पंचपरमेष्ठी विधान एवं शान्तिविधान का आयोजन किया गया तथा नूतन पाठशालायें एवं प्रतिदिन की शास्त्र सभा भी प्रारंभ की गई।

समाज ने इस ज्ञानयज्ञ का बड़े उत्साह से स्वागत किया तथा यह गतिविधि अनवरत रूप से चलाने हेतु नागपुर फैडरेशन का आभार व्यक्त किया। **ह्न विश्वलोचन जैनी**

2. सनावद (म.प्र.) : यहाँ श्री जवरचन्दजी कपूरचन्दजी पारमार्थिक ट्रस्ट के अन्तर्गत युवा मुमुक्षु मण्डल सनावद के तत्त्वावधान में सनावद, मलकापुर, पंधाना, बेडिया, बड़वाह, मण्डलेश्वर एवं महेश्वर आदि आठ स्थानों पर दिनांक 1 अगस्त, 2004 से छहढ़ाला पर विशेष प्रवचन, प्रौढ़कक्षा, प्रश्नमंच आदि का आयोजन किया जा रहा है। फलस्वरूप इस वर्ष को **छहढ़ाला वर्ष** के रूप में मनाने का उद्देश्य है।

उक्त सम्पूर्ण कार्यक्रम का सफल संचालन पण्डित रीतेशकुमारजी शास्त्री, सनावद द्वारा किया जा रहा है। इसके अन्तर्गत माह में दो बार परीक्षा ली जाती है; जिसमें बालक से लेकर प्रौढ़जन तक लगभग 425 लोग विशेष उत्साह के साथ भाग ले रहे है। **ह्न रीतेश जैन**

वैराग्य समाचार

1.वढवान (अहमदाबाद) निवासी श्रीमती गजराबेन संघवी धर्मपत्नी श्री मंगलदास शीवलाल संघवी का दिनांक 10 अक्टूबर, 2004 को शांतपरिणामपूर्वक देहावसान हो गया। आप अत्यन्त धार्मिक एवं स्वाध्यायप्रिय महिला थी। विगत 62 वर्षों से आप निरन्तर सोनगढ़ जाकर गुरुदेवश्री द्वारा बताये तत्त्वज्ञान का अभ्यास करती थी।

आपकी स्मृति में पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट को 5000/- रुपये प्राप्त हुये; एतदर्थ धन्यवाद !

2. दाहोद निवासी श्री सुरेन्द्रभाई कस्तुरचन्द तलाटी (वर्तमान निवासस्थान मुम्बई) का दिनांक 24 अक्टूबर, 2004 को 84 वर्ष की आयु मे शांतपरिणामपूर्वक देहावसान हो गया। आपका सम्पूर्ण जीवन देव-शास्त्र-गुरु की अनुनय विनय एवं भक्ति हेतु समर्पित था। प्रतिदिन शास्त्र स्वाध्याय, मनन, तत्त्वचिंतन, पूजन-भक्ति आदि आपके जीवन का नित्यक्रम था।

दिवगंत आत्मायें शीघ्र ही अभ्युदय को प्राप्त हो ह्न यही मंगल भावना !

ह्न प्रबन्ध सम्पादक

(पृष्ठ 3 का शेष ...)

समयसार की ४७ शक्तियों में प्रभुत्वशक्ति की चर्चा त्रिकाली स्वभाव की बात है और यहाँ पर्याय में प्रभुता प्रगट करने की अपेक्षा प्रभु कहा है। आत्मा स्वयं ही सम्यग्दर्शन आदि निर्मलपर्याय को करने कारण प्रभु भी है।

इसीप्रकार आत्मा के कर्त्ता, भोक्ता, सदेहप्रमाण, अमूर्तत्त्व तथा कर्मसंयुक्ताकी बात को संक्षेप में इसप्रकार जानना चाहिये।

आत्मा वास्तव में अपने विभावभावों का तथा व्यवहार से पौद्गलिक कर्मों का कर्त्ता है।

निश्चय से सुख-दुःख आदि रूप परिणामों का भोक्ता हैऔर व्यवहार से शुभाशुभ कर्मों के निमित्त से प्राप्त इष्टानिष्ट सामग्री का भोक्ता है।

वस्तुत: आत्मा लोकप्रमाण असंख्यातप्रदेशी है और व्यवहार से नामकर्म के निमित्त से प्राप्त छोटे-बड़े शरीर प्रमाण है, इसलिये स्वदेहपरिमाण है।

यद्यपि आत्मा व्यवहारनयसे पुद्गल कर्म के संयोग से मूर्तिक कहलाता है; परन्तु वास्तव में वह अमूर्तिक ही है।

निश्चयनय से आत्मा अपने ही अशुद्धभावों से ही सहित है। व्यवहारनयसे अशुद्धभावों का निमित्त पाकर बंधनेवाले नूतन कर्मों से भी सहित है।

इसप्रकार शुद्ध-अशुद्धनय के कथन से सिद्धान्त के अनुसार संसारी जीव की विवक्षा जानना चाहिए। ●

बालकों में संस्कारों का बिजारोपण

मुम्बई (दहिसर) : डॉ. शुद्धात्मप्रभा टडैय्या, मुम्बई द्वारा बालकों में संस्कारों का बिजारोपण हो इस बात को ध्यान में रखकर लिखी गई किताबे जैन के.जी. भाग 1, 2 व 3 तथा जैन नर्सरी को देखकर ब्र. सुमतप्रकाशजी, खनियाधांना ने इन पुस्तकों के माध्यम से बालकों में अच्छे संस्कार एवं सच्चा ज्ञान कराने प्राप्त कराने हेतु लेखिका के प्रयासों की भूरि-भूरि प्रशंसा की। साथ ही अन्य बच्चों को भी इन किताबों के माध्यम से संस्कारित करने के लिए उन्होंने बच्चो के अभिभावकों को दिशानिर्देश भी दिये। **ह्न सुरेशभाई शहा**

पुस्तक विमोचन

जयपुर (राज.) : यहाँ श्री टोडरमल स्मारक भवन में दिनांक 24 अक्टूबर, 2004 डॉ. शुद्धात्मप्रभा टडैय्या, मुम्बई द्वारा रचित **जैन के.जी. भाग एक (मराठी)** संस्करण का विमोचन ब्र. यशपालजी जैन, जयपुर के करकमलों से सम्पन्न हुआ। उक्त पुस्तक का मराठी अनुवाद पण्डित दिग्विजयजी आलमान, हेरले एवं सम्पादन पण्डित सतीशजी बोरालकर के द्वारा किया गया है।

वीतराग-विज्ञान पाठशाला प्रारंभ

सनावद (म.प्र.) : यहाँ श्री जवरचन्दजी कपूरचन्दजी पारमार्थिक ट्रस्ट के अन्तर्गत युवा मुमुक्षु मण्डल सनावद के तत्त्वावधान में श्री दि. जैन मन्दिर में नवीन पाठशाला का शुभारंभ किया गया।

प्रतिदिन प्रात: एवं सांयकाल पण्डित रीतेशकुमारजी शास्त्री, सनावद द्वारा कक्षा का सफल संचालन किया जा रहा है; जिसके माध्यम से लगभग 40 बालक अच्छे संस्कारों के साथ नैतिक मूल्यों की भी शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं।

पुस्तक मुद्रित ह्न **शुद्धोपयोग विवेचन**

लेखक : पण्डित मनोहर मारवड़कर, महावीरनगर, नागपुर (महा.)
प्रकाशक : अ. भा. दि. जैन विद्वत् परिषद् ट्रस्ट, जयपुर
पृष्ठ संख्या : 284 (दो सौ चौरासी)
मूल्य : 30/-(तीस रुपये मात्र) डाक व्यय 5/- (पाँच रुपये मात्र)

विषयवस्तु : शुद्धोपयोग की व्याख्या, उसके स्वामी तथा प्रक्रिया, दैनंदिन आवश्यक क्रियाओं में उपयोगिता ह्न जैसे जिनदर्शन, सामायिक, स्वाध्याय, संयम, तप, ध्यान आदि तथा सामयिक प्रश्नोत्तरों से समाधान।

उक्त विषयों के समर्थनार्थ चौंसठ ग्रन्थों से तीन सौ से अधिक उद्धरण भी आवश्यक स्थानों पर दिये गये है; जो कि प्रामाणिकता के लिये पर्याप्त है। इस ग्रन्थ का स्वाध्याय सभी साधर्मीजन अवश्य करें ह्न यही मंगल भावना है। ग्रन्थ मगवाँने का पत्ता ह्न

1. अ. भा. दि. जैन विद्वत् परिषद् ट्रस्ट 281, जादोननगर, दुर्गापुरा स्टेशन रोड, जयपुर 2. श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए-4 बापूनगर जयपुर -15 3. मनोहर मारवड़कर, 17-ब, महावीरनगर, नागपुर **ह्न अखिल बंसल**

हार्दिक बधाई !

श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय, जयपुर के छात्र रोहन श्रेयांसजी रोटे, कोल्हापुर एवं प्रशान्त वंसतजी उखलकर, गोवर्धन को उपाध्याय वरिष्ठ(12 वीं) कक्षा में क्रमश: **78 प्रतिशत एवं 75 प्रतिशत** अंक अर्जित करने पर अशोकनगर (म.प्र.) में आयोजित **यंग जैना अवार्ड-2004** में रजत प्रतीक चिन्ह, प्रशस्ति-पत्र एवं सत्साहित्य प्रदान कर सम्मानित किया गया। ज्ञातव्य है कि आप दोनों वर्ष- 2002 में भी 10 वीं कक्षा में उच्चतम अंक प्राप्त करने पर पूर्व में भी इस अवार्ड से सम्मानित किये जा चुके हैं।

आपकी इस उपलब्धी पर जैन पथप्रदर्शक एवं महाविद्यालय परिवार की ओर से हार्दिक बधाई ! **ह्नप्रबन्ध सम्पादक**

क्या आप चाहते हैं कि -

* आपके बालकों का जीवन तत्त्वज्ञान से आलोकित एवं सदाचार से सुगन्धित हो ? * आपके बालकों के हृदय में सच्चे देव-शास्त्र-गुरु के प्रति वास्तविक बहुमान हो ? * आपके बालकों को चारों अनुयोगों का सामान्य ज्ञान हो ?

यदि हाँ तो उसे आज ही
भारतवर्षीय वीतराग-विज्ञान पाठशाला समिति के सहयोग एवं प्रेरणा से स्थापित स्थानीय पाठशाला में प्रवेश अवश्य दिलाइये।

प्रमुख विशेषतायें

* वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड जयपुर द्वारा स्वीकृत बालबोध, प्रवेशिका, विशारद आदि 24 विविध ग्रन्थों संबंधी परीक्षाओं के पाठ्यक्रम की शिक्षा दी जाती है। * शिक्षण-प्रशिक्षण शिविरों के माध्यम से प्रशिक्षित अध्यापकों द्वारा रोचक शैली में अध्यापन। * नन्हें-मुन्नें बालकों पर धार्मिक पढ़ाई के गृहकार्य का कम से कम बोझ। * समिति द्वारा नियुक्त निरीक्षकों द्वारा समय-समय पर पाठशालाओं का निरीक्षण, उचित मार्गदर्शन एवं सहायता। * परीक्षा में सर्वोच्च अंक प्राप्त करनेवाले छात्रों को विविध माध्यमों द्वारा विशेष प्रोत्साहन ।

पुरस्कार वितरण सम्पन्न

जयपुर (राज.) : यहाँ श्री टोडरमल स्मारक भवन में दिनांक 26 अक्टूबर, 2004 को श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय के उपाध्याय एवं शास्त्री वर्ग में अध्ययनरत छात्रों का सत्र-2004 का परीक्षा परिणाम घोषित किया गया तथा आध्यात्मिक शिविर के समापन अवसर पर उत्तार्ण छात्रों को पुरस्कार वितरित किये गये।

पुरस्कार प्राप्त छात्रों में उपाध्याय वर्ग में संयुक्तरूप से रोहन श्रेंयासजी रोटे कोल्हापुर (महा.) ने प्रथमस्थान, नितिन चन्द्रप्रकाशजी जैन सेमारी(राज.) एवं प्रतीक पवनकुमारजी जैन जबलपुर (म.प्र.) ने द्वितीय स्थान प्राप्त किया।

शास्त्री वर्ग में संयुक्तरूप से प्रथमस्थान संभव शीतलचन्दजी जैन नैनधरा (म.प्र.), द्वितीय स्थान जितेन्द्र विजयकुमारजी चौगुले भिलवड़ी (महा.) एवं कमलेश शीलचन्दजी जैन बण्डा (म.प्र.) ने प्राप्त किया।

कक्षावार पुरस्कार प्राप्त छात्रों में उपाध्याय कनिष्ठ (11 वीं) कक्षा में प्रथम स्थान अंकित श्रीपालजी जैन कोलारस (म.प्र.) एवं द्वितीय स्थान सौरभ मुन्नालालजी जैन कर्रापुर (म.प्र.) ने प्राप्त किया। उपाध्याय वरिष्ठ (12 वीं) कक्षा में प्रशांत वंसतजी उखलकर गोवर्धन (महा.) एवं अनुज अजितजी जैन जयपुर (राज.) ने प्रथम स्थान तथा सतीश किशोरचन्दजी बोरालकर (महा.) ने द्वितीय स्थान प्राप्त किया।

शास्त्री (बी.ए.) प्रथम वर्ष में प्रथम स्थान शंशाक लक्ष्मीचन्दजी जैन अभाना (म.प्र.) एवं द्वितीय स्थान सुदीप दिलीपजी कान्हेड, देवलगाँवसाकरशा (महा.) ने प्राप्त किया। शास्त्री (बी.ए.) द्वितीय वर्ष में प्रथम स्थान अभिषेक श्रवणकुमारजी जैन, सिलवानी (म.प्र.), द्वितीय स्थान दीपेश संतोषजी जैन गुढ़ा (म.प्र.) एवं आशीष मदनकुमारजी जैन जबेरा (म.प्र.) ने प्राप्त किया तथा शास्त्री (बी.ए.) तृतीय वर्ष में संदीप प्रकाशचन्दजी जैन, विनौता (राज.) एवं सौरभ विनोदकुमारजी जैन शहपुरा (म.प्र.) ने क्रमश: प्रथम एवं द्वितीय स्थान प्राप्त किया।

उक्त प्रथम, द्वितीय स्थान प्राप्त समस्त छात्रों को क्रमश: 1100/- एवं 900- रुपये की नकद राशि प्रदान कर पुरस्कृत किया गया।

आप सभी के उज्ज्वल भविष्य की कामना करते हुए जैन पथप्रदर्शक परिवार की ओर से हार्दिक बधाई ! **ह्न प्रबन्ध सम्पादक**

छपकर तैयार...

1. आचार्य कुन्दकुन्ददेव द्वारा विरचित प्रवचनसार परमागम के सम्पूर्ण ज्ञानतत्त्वप्रज्ञापन महाधिकार पर प्रकाश डालनेवाली डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल की नवीनतमकृति **प्रवचनसार अनुशीलन, पृष्ठ-456, मूल्य :** 30/- रुपये छपकर तैयार है।

2. व्यवहार धर्म के आध्यात्मिक रहस्यो से परिपूर्ण, जीवनोपयोगी समसामयिक ऐसे 21 निबन्धों से युक्त पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल की नवीनतम कृति **ऐसे क्या पाप किये, पृष्ठ-232, मूल्य : 15/- रुपये** छपकर तैयार है। इच्छुक महानुभाव निम्न पते से मंगा सकते हैं। **ह्न सत्साहित्य विक्रय विभाग,**
श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए-4, बापूनगर, जयपुर-15

तत्त्वचर्चा

प्रवचनसार का सार

17

ह्न डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

(गतांक से आगे ...)

अग्रिम गाथा में आचार्य इस विषय को और अधिक स्पष्ट करते हैं ह्न

पप्पा इट्ठे विसये फासेहिं समस्सिदे सहावेण।
परिणममाणो अप्पा सयमेव सुहं ण हवदि देहो ।।६५।।

(हरिगीत)

इन्द्रिय विषय को प्राप्त कर यह जीव स्वयं स्वभाव से।
सुखरूप हो पर देह तो सुखरूप होती ही नहीं ।।६५।।

स्पर्शनादिक इन्द्रियाँ जिनका आश्रय लेती है ह्न ऐसे इष्ट विषयों को पाकर स्वभाव से परिणमन करता हुआ आत्मा स्वयं ही सुखरूप (इन्द्रियसुखरूप) होता है, देह सुखरूप नहीं होती।

इस गाथा की टीका में इस संदर्भ में लिखते हैं कि 'वास्तव में इस आत्मा के लिए सशरीर अवस्था में भी शरीर सुख का साधन हो ह्न ऐसा हमें दिखाई नहीं देता।'

सम्यग्दृष्टि के जो लौकिक सुख-दु:ख हैं, वे भी शरीर के कारण नहीं हैं। यदि सम्यग्दृष्टि सुखी है तो वह शरीर के कारण नहीं है, वह आत्मा के अनुभव के कारण ही सुखी है।

एगंतेण हि देहो सुहं ण देहिस्स कुणदि सग्गे वा।
विसयवसेण दु सोक्खं दुक्खं वा हवदि सयमादा।।६६।।

(हरिगीत)

स्वर्ग में भी नियम से यह देह देही जीव को।
सुख नहीं दे यह जीव ही बस स्वयं सुख-दुखरूप हो ।।६६।।

एकांत से तो स्वर्ग में भी शरीर शरीरी (जीव) को सुख नहीं देता; परन्तु विषयों के वश से सुख अथवा दु:खरूप स्वयं आत्मा होता है।

पूर्व की गाथाओं में आचार्यदेव ने अतीन्द्रियसुख के बारे में कहा था और इन गाथाओं में वे इन्द्रियसुख की चर्चा कर रहे हैं। कहने का आशय यह है कि **जो भी हमारे आत्मा में विद्यमान हैं; चाहे वह अतीन्द्रिय आनन्द हो या लौकिक सुख-दु:ख हों; उन सबका कारण आत्मा में ही विद्यमान है, देह में नहीं।**

अंत में आचार्य सुखाधिकार की इन दो गाथाओं के माध्यम से सोदाहरण समझाते हैं कि सुख और दु:ख दोनों स्वाभाविक ही हैं।

तिमिरहरा जइ दिट्ठी जणस्स दीवेण णत्थि कायव्वं।
तह सोक्खं सयमादा विसया किं तत्थ कुव्वंति।।६७।।

(हरिगीत)

तिमिरहर हो दृष्टि जिसकी उसे दीपक क्या करें।
जब जिय स्वयं सुखरूप हो इन्द्रिय विषय तब क्या करें ।।६७।।

यदि प्राणी की दृष्टि तिमिरनाशक हो तो दीपक से कोई प्रयोजन नहीं है अर्थात् दीपक कुछ नहीं कर सकता; उसीप्रकार जहाँ आत्मा स्वयं सुखरूप परिणमन करता है; वहाँ विषय क्या कर सकते हैं ?

चमगादड़, उल्लू और बिल्ली की आँखों में इतनी ताकत होती है कि अँधेरे में भी सब दिखाई देता है; क्योंकि उनकी दृष्टि तिमिरहरा होती है। हमें देखने के लिए उजाले की जरूरत है; परन्तु उन्हें उजाले की जरूरत नहीं पड़ती है।

ऐसे ही जिनके स्वाभाविक सुख है; उनको सुख के लिए पाँच-इन्द्रियों के विषयों की जरूरत नहीं है। कहने का आशय यही है कि इस जीव के सुख-दु:ख का जिम्मेदार वही है और कोई दूसरा नहीं।

इस संदर्भ में ६८वीं गाथा में दिया गया दूसरा उदाहरण इसप्रकार हैह्न

सयमेव जहादिच्चो तेजो उण्हो य देवदा णभसि।
सिद्धो वि तहा णाणं सुहं च लोके तहा देवो ।।६८।।

(हरिगीत)

जिसतरह आकाश में रवि उष्ण तेजरु देव है।
बस उसतरह ही सिद्धगण सब ज्ञान सुखरु देव हैं।।६८।।

आकाश में सूर्य अपने आप ही तेज, उष्ण और देव हैं; उसीप्रकार लोक में सिद्ध भगवान भी (स्वयमेव) ज्ञान, सुख और देव हैं।

सूर्य में तेज, गर्मी व प्रकाश ह्न ये तीन गुण स्वभाव से ही हैं। सूर्य को देवता कहा जाता है; इस विवक्षा से उसमें देवत्व, उष्णत्व व तेजत्व ये स्वभाव से ही है, किसी दूसरे की वजह से नहीं है। वह अपने आप ही गर्म है, प्रकाशमय है; किसी दूसरे के कारण वह गर्म व प्रकाशमय नहीं है।

ऐसे ही सिद्ध भगवान अपने ज्ञान, सुख व देवत्व में स्वयं ही कारण हैं, उन्हें किसी दूसरे की जरूरत नहीं है।

इसप्रकार आचार्य यहाँ सुखाधिकार समाप्त करते हैं।

अब आचार्य शुभपरिणामाधिकार प्रारम्भ करते हैं।

शुभपरिणाम का स्वरूप स्पष्ट करते हुए वे लिखते हैं ह्न

देवदजदिगुरुपूजासु चेव दाणम्मि वा सुसीलेसु।
उववासादिसु रत्तो सुहोवओगप्पगो अप्पा ।।६९।।
जुत्तो सुहेण आदा तिरिओ वा माणुसो व देवो वा।
भूदो तावदि कालं लहदि सुहं इन्द्रियं विविहं ।।७०।।
सोक्खं सहावसिद्धं णत्थि सुराणं पि सिद्धमुवदेसे।
ते देहवेदणट्टा रमंति विसएसु रम्मेसु।।७१।।

(हरिगीत)

देव-गुरु-यति अर्चना अर दान उपवासादि में।
अर शील में जो लीन शुभ उपयोगमय वह आतमा।।६९।।
अरे शुभ उपयोग से जो युक्त वह तिर्यग्गति।
अर देव मानुष गति में रह प्राप्त करता विषयसुख।।७०।।
उपदेश से है सिद्ध देवों के नहीं है स्वभावसुख।
तनवेदना से दुखी वे रमणीक विषयों में रमे ।।७१।।

देव, गुरु और यति की पूजा में, दान में, सुशीलों में और उपवासादिक में लीन आत्मा शुभोपयोगात्मक है।

शुभोपयोगयुक्त आत्मा, तिर्यंच, मनुष्य अथवा देव होकर, उतने समय तक विविध इन्द्रियसुख प्राप्त करता है।

जिनदेव के उपदेश से यह सिद्ध है कि देवों के भी स्वभावसिद्ध सुख नहीं है; वे (पंचेन्द्रियमय) देह की वेदना से पीड़ित होने से रम्य विषयों में रमते हैं।

शुभोपयोग में लीन तिर्यंच, मनुष्य और देव सभी शुभोपयोग के फल में इन्द्रियसुखों की प्राप्ति करते हैं।

पूर्व में आचार्यदेव ने शुद्धोपयोगाधिकार में कहा था कि शुद्धोपयोगी मुनि निर्वाणसुख को प्राप्त करते है और अन्य शुभोपयोगी मुनि स्वर्गसुख को प्राप्त करते हैं। यह भी कहा था कि स्वर्गसुख खोलते घी में उबलते हुए प्राणियों के दु:ख के समान ही है।

यहाँ नरक को छोड़कर शेष तीन गतियाँ ली हैं; क्योंकि नरक शुभपरिणाम का फल नहीं है; किन्तु तिर्यंच आयु को शुभ माना गया है।

तिर्यंच में भी कोई मरना नहीं चाहता है, यदि उसे मारने के लिए दौड़ते है तो वह जान बचाने के लिए भागता है। इससे आशय यह है कि वह उसे अच्छा मान रहा है; अत: वह शुभ है, शुभ का फल है; इसप्रकार शुभ के फल में तीन गतियाँ ली हैं; नरकगति नहीं ली है। वह इन तीन गतियों में उतने समय तक विविध इन्द्रियसुख प्राप्त करता है। तिर्यंच भी शुभोपयोग के फल में सुख प्राप्त करता है। तिर्यंच भोग-भूमियाँ भी होती हैं; पर नारकी भोगभूमियाँ नहीं होती हैं।

अमेरिका के कुत्ते और बिल्लियों को रहने के लिए एयर कंडीशन घर एवं घूमने के लिए कारें मिलती हैं। उनके भी ऐसे पुण्य का उदय है; परन्तु ऐसे पुण्य का उदय नारकी के नहीं है; इसलिए उन्होंने तिर्यंच को तो शुभोपयोग के फल में लिखा, पर नारकी को नहीं।

पंचेन्द्रियों के विषयों का जो सुख है, वह शुद्धोपयोग का फल नहीं है और वह वास्तव में सुख ही नहीं है ह्न

णरणारयतिरियसुरा भजन्ति जदि देहसंभवं दुक्खं।
किह सो सुहो व असुहो उवओगो हवदि जीवाणं।।७२।।

(हरिगीत)

नर-नारकी तिर्यंच सुर यदि देहसंभव दु:ख को।
अनुभव करें तो फिर कहो उपयोग कैसे शुभ-अशुभ ?

मनुष्य, नारकी, तिर्यंच और देव (सभी) यदि देहोत्पन्न दु:ख को अनुभव करते हैं, तो जीवों का वह (शुद्धोपयोग से विलक्षण अशुद्ध) उपयोग शुभ और अशुभ ह्न दो प्रकार का कैसे हो सकता है ?

पंचेन्द्रियों के विषयों की प्राप्ति पुण्य के उदय से होती है और उनमें जीव दौड़-दौड़कर रमता है। वह रमणता पाप है; इसप्रकार उनमें पाप और पुण्य का भेद करने से कुछ लाभ नहीं है। शुभोपयोग हो या अशुभोपयोग हो ह्न दोनों के फल सच्चे सुखरूप तो हैं ही नहीं।

आचार्य यहाँ स्पष्ट कर रहे हैं कि एक का नाम सुख है और एक का नाम दु:ख है; पर हैं तो दोनों दु:ख ही ह्न ऐसी स्थिति में शुभोपयोग और अशुभोपयोग ह्न ऐसे भेद करने से क्या लाभ ?

पुण्य के उदय से अनुकूल भोगसामग्री प्राप्त होती है और पाप के उदय से प्रतिकूल भोगसामग्री प्राप्त होती है।

परन्तु हम कहते हैं कि पुण्य के उदय से शादी हुई और पाप के उदय से शादी नहीं हुई। अरे भाई ! ऐसा कहने पर तो सभी ब्रह्मचारी पापी हो जाएँगे। यहाँ ऐसा कहना चाहिए कि पुण्य के उदय से अनुकूल पत्नी का संयोग होता है और पाप के उदय से प्रतिकूल पत्नी का संयोग होता है।

इसीप्रकार यदि ऐसा कहेंगे कि पुण्य के उदय से रोटियाँ मिलीं और पाप के उदय से रोटियाँ नहीं मिली तो सभी उपवास वाले पापी हो जाएँगे। यहाँ ऐसा कहना चाहिए कि पुण्य के उदय से अनुकूल भोज्य सामग्री मिली और पाप के उदय से प्रतिकूल भोज्यसामग्री मिली, पेट में जाते ही दर्द शुरू हो गया, न खाने में मजा आया और न पीने में।

पुण्य-पाप दोनों ही संयोग है; लेकिन पाप के उदय को हमने वियोग में घटित किया। पुण्य एवं पाप का उदय न हो तो न अच्छा संयोग मिले न बुरा।

यदि दोनों का उदय न हो तो ज्ञानभानु का उदय होता है ह्न

'पुण्य पाप सब नाश कर ज्ञान भान परकाश।'

पुण्य और पाप ह्न दोनों ही से भोग सामग्री मिल रही है, चाहे वह अच्छी मिले, चाहे बुरी; अनुकूल पत्नी मिले अथवा प्रतिकूल पत्नी मिले; आखिर तो सब भोगसामग्री ही है। उनसे यदि भोगसामग्री मिलती है तो उसमें शुभ और अशुभ ह्न ऐसे दो भेद करने से क्या लाभ है ?

७२ वीं गाथा के भावार्थ में और अधिक स्पष्ट किया है ह्न

'शुभोपयोगजन्य पुण्य के फलरूप में देवादिक की सम्पदायें मिलती हैं और अशुभोपयोगजन्य पाप के फलरूप में नरकादिक की आपदायें मिलती हैं; किन्तु वे देवादिक तथा नारकादिक दोनों परमार्थ से दु:खी ही हैं।

इसप्रकार दोनों का फल समान होने से शुभोपयोग और अशुभोपयोग दोनों परमार्थ से समान ही हैं अर्थात् उपयोग में अशुद्धोपयोग में - शुभ और अशुभ नामक भेद परमार्थ से घटित नहीं होते।'

एक ने डरा धमकाकर लूटा और एक ने चाय-पानी पिलाकर लूटा, प्रेम से लूटा। लुटेरों में ऐसे दो भेद करने से आप क्या सिद्ध करना चाहते हैं ? जिसप्रकार लुटेरों में अच्छे-बुरे का भेद करने से कोई लाभ नहीं है; उसीप्रकार अशुद्धोपयोग में पाप व पुण्य ऐसे दो भेद करने से हमें क्या उपलब्ध होगा ?

आगे आचार्य कहेंगे कि जिन्हें पुण्य व पाप में अंतर दिखाई देता है; दोनों एक हैं ह्न ऐसा दिखाई नहीं देता; वे सभी अज्ञानी हैं और वे अपार संसार में भ्रमण करेंगे।

ण हि मण्णदि जो एवं णत्थि विसेसो त्ति पुण्णपावाणं।
हिंडदि घोरमपारं संसारं मोहसंछण्णो।।७७।।

(हरिगीत)

पुण्य पाप में अन्तर नहीं है जो न माने बात ये।
संसारसागर में भ्रमे मदमोह से आच्छन्न वे।।

शुभपरिणामाधिकार से कई व्यक्ति ऐसा ही समझते हैं कि इसमें आचार्यदेव ने 'देवपूजा करना चाहिए' ह्न ऐसा लिखा होगा; पर आचार्यदेव ने तो 'शुभभाव भी करनेयोग्य नहीं अथवा शुभभाव को धर्म नहीं मानना' ह्न यह समझाने के लिए शुभपरिणामाधिकार लिखा है। **(क्रमश:)**

रजिस्ट्रेशन आर. एन. आई. 31109/77

शिलान्यास महोत्सव सानन्द सम्पन्न

द्रोणगिरि (छतरपुर-म.प्र.) : यहाँ श्री गुरुदत्त-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट के अन्तर्गत निर्माणाधीन सिद्धायतन संकुल में दि. 16 अक्टूबर, 04 को राजावरदत्त भोजनालय का शिलान्यास महोत्सव सानन्द सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर विधि-विधान के सम्पूर्ण कार्य पण्डित राजकुमारजी शास्त्री, बांसवाड़ा द्वारा सम्पन्न कराये गये।

शिलान्यास का कार्यक्रम डॉ. समीर शाह मुम्बई, श्रीमती जया शान्तिलाल गाडा माटुंगा, श्रीमती मधुबाला प्रवीणचन्द्र शाह सायन, श्रीमती दीप्ति दीपक शाह माटुंगा, श्रीमती पारूल निलेश शाह मुम्बई तथा श्रीमती दया असरू शाह मुम्बई के करकमलों से सम्पन्न हुआ तथा श्री अकलंक निलय का शुभारंभ डॉ. वासन्तीबेन शाह, मुम्बई द्वारा किया गया।

रविवारीय गोष्ठी सानन्द सम्पन्न

जयपुर (राज.) : श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय द्वारा आयोजित रविवारीय गोष्ठियों की शृंखला में दिनांक 31 अक्टूबर, 2004 को **दीपावली पर्व : वर्तमान सन्दर्भ में** विषय पर गोष्ठी का आयोजन किया गया; जिसकी अध्यक्षता श्री महावीरप्रसादजी जैन, कोलकाता ने की। श्रेष्ठ वक्ता के रूप में शास्त्री वर्ग से वीरेन्द्र जैन, बरा तथा उपाध्याय वर्ग से पंकज दहातोंडे, परली को चुना गया।

गोष्ठी का संचालन शास्त्री अन्तिम वर्ष के छात्र सुरेश काले राजुरा ने तथा संयोजन विक्रांत पाटनी झालरापाटन व चेतन जैन खडैरी ने किया।

योगसार प्राभृत आध्यात्मिक कृति

योगसार प्राभृत : आचार्य अमितगति द्वारा विरचित संस्कृत भाषा में लिपिबद्ध सरल, सुबोध आध्यात्मिक ग्रन्थ है। जिसकी व्याख्या ब्र. यशपालजी जैन, जयपुर द्वारा की गई है तथा संपादन पण्डित शान्तिकुमारजी पाटील, जयपुर द्वारा किया गया है।

ग्रन्थ की विषयवस्तु पर विचार करे तो इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि आचार्य कुन्दकुन्ददेव के साहित्य का पूर्ण प्रभाव इसपर परिलक्षित होता है, मानो आचार्य कुन्दकुन्ददेव के पंचपरमागमों की कुल १४५३ गाथाओं का ही मर्म (हार्द) आचार्य अमितगति ने इसके मात्र ५४० श्लोकों में समाहित कर दिया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रकाशन पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर द्वारा किया गया है। ३३२ पृष्ठीय इस ग्रन्थ का मूल्य ३०/-(तीस रुपये मात्र) है। इच्छुक महानुभाव निम्न पते से मँगवा सकते हैं ह्न

ह्न सत्साहित्य विक्रय विभाग

श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए-4, बापूनगर जयपुर - 302015

अविस्मरणीय अद्भुत...

राजस्थान में स्थित प्रसिद्ध श्वेताम्बरतीर्थ नागेश्वर पार्श्वनाथ में बने विशाल पंडाल में रिलीजियस कान्फ्रेंस कमेटी, जैन सोश्यल ग्रुप इन्टरनेशनल फैडरेशन, मुम्बई द्वारा आयोजित सभा में दिनांक 2 अक्टूबर, 2004 को देश-विदेश से पधारे 2000 मेम्बर्स की उपस्थिति में **डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल , जयपुर** का **अहिंसा : महावीर की दृष्टि में** विषय पर मार्मिक उद्बोधन हुआ; जिसके माध्यम से समस्त सदस्यों में एक नवचेतना का निर्माण हुआ। **समिति के चेयरमेन श्री विजेन्द्र गदिया** लिखते हैं ह्न

दि. 2 अक्टूबर, 2004 का दिन सिर्फ मेरे लिये ही नहीं, बल्कि उपस्थित लगभग 2000 लोगों के लिये कभी न भूलनेवाला दिन होगा। डॉ. भारिल्ल की प्रखरवाणी, तेजस्वी उद्बोधन ने उपस्थित जैन समुदाय को एक नई उर्जा दी हैं। चिन्तन करने के लिये विषय दे दिया हैं। बिखरते हुए समाज को एक नई दिशा प्रदान की हैं।

जरूरत हैं हमारे समाज में आप जैसे चिन्तक, प्रखरवक्ता की जो समाज को सही मार्गदर्शन दे सके, आनेवाली पीढ़ी को सही रास्ता दिखा सकें।

आपने अपने व्यस्ततम समय में से थोड़ा सा वक्त निकालकर रिलीजियस कान्फ्रेंस को सफलता के शिखर तक पहुचाँने में सहयोग प्रदान किया; तदर्थ जितना भी आभार माना जाये कम है। आशा है कि आपका स्नेह व सहयोग सदैव बना रहेगा। एक बार पुन: धन्यवाद !

डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के आगामी कार्यक्रम

26 नव. से 2 दिस.	शिकोहाबाद	पंचकल्याणक प्रतिष्ठा
27 से 31 दिसम्बर	देवलाली	विधान एवं शिविर
08 से 09 जन.,05	मुम्बई (कांदीवली)	डॉक्टरों का सम्मेलन
07 से 13 फर.05	दिल्ली	पंचकल्याणक प्रतिष्ठा

जैनपथप्रदर्शक (पाक्षिक) नवम्बर (द्वितीय) 2004
J. P.C. 3779/02/2003-05

प्रति,

सम्पादक : **पण्डित रतनचन्द भारिल्ल** शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., बी.एड.
प्रबन्ध सम्पादक : **पण्डित संजीवकुमार गोधा,**डबल एम.ए.जैनविद्या व तुलनात्मक धर्मदर्शन तथा इतिहास ❊ **पं. जितेन्द्र वि.राठी शास्त्री**
प्रकाशक एवं मुद्रक : **ब्र. यशपाल जैन** द्वारा जैनपथप्रदर्शक समिति के लिए जयपुर प्रिण्टर्स प्रा.लि., एम. आई. रोड, जयपुर से मुद्रित तथा त्रिमूर्ति कम्प्यूटर्स, ए-4, बापूनगर, जयपुर से प्रकाशित।

यदि न पहुँचे तो कृपया निम्न पते पर भेजें -
ए- 4 बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)
फोन : (0141) 2705581, 2707458
तार : त्रिमूर्ति, जयपुर **फैक्स :** 2704127